eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 1, Issue 01, Jan 2018

आर्थिक सुधारों को मानवीय संस्पर्श

[1]डॉ0 राजेश चन्द्र मिश्र

[1]एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य, हीरालाल रामनिवास स्ना0 महाविद्यालय, खलीलाबाद, संत कबीर नगर

Received: 01 Jan 2018, Accepted: 15 Jan 2018 ; Published on line: 31 Jan 2018

Abstract

रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक सुप्रसिद्ध कविता है ''सोनार तरी''। अर्थात् सोने की नाव ! सोने की नाव में सुनहरे धान के लिए जगह है, लेकिन किसान के लिए कोई जगह नहीं है। स्वाभाविक भी है। अतः नाविक तीखेपन के साथ बरजने की मुद्रा में कह उठता है ''ठाइ नाइं ठाई नाइं, आमार छोटो तरी।'' जगह नहीं है, जगह नहीं है, मेरी छोटी–सी नाव है– सोने की। सोने की नाव, सोने का धान– उसमें किसान के लिए जगह कहाँ हो सकती है ? नाव का संकुचित दायरा जो ठहरा .....। कुछ ऐसी ही स्थिति आज के आर्थिक विकास की हो गयी है।

शब्द संक्षेप– आर्थिक सुधार, मानवीय संस्पर्श, आर्थिक विकास, उदारीकृत बाजारवादी अर्थव्यवस्था।

Introduction

एक बहुत छोटा–सा समूह है, जिसके लिए विकास सुवर्ण–द्वार खुला है, शेष लोग हाशिए पर रह जाने को अभिशप्त हैं। एक छोटा वर्ग है– जो सी0इ0ओ0 है, मार्केट मैनेजर है, मीडिया मैनेजर है, फायनेन्स मैनेजर है। बिजनेस टाइकून है। इस उदारीकृत बाजारवादी अर्थव्यवस्था में चांदी काट रहा है। शेष जन–समूह की नियति अनिश्चित है। वैसे ऐसा भी नहीं कि विकास नहीं हो रहा है, विकास तो हो ही रहा है, लेकिन जो विकास है, उसका लाभ व्यापक जन समुदाय तक नहीं पहुँच पा रहा है। विकास की इस प्रक्रिया में व्यापक जन भागीदारी भी नहीं हो पा रही है। इसका एक कारण इसका विशेषीकृत तकनीकी पहलू वाला होना है। जबकि विकास तो ऐसा होना चाहिए कि वह समग्र मानवीय पहलुओं से संयुक्त हो। अगर ऐसा नहीं होगा तो सोने की नाव के नाविक की तरह देश के नाव के खेवनहार भी सिर्फ अभिजन और विशिष्ट लोगों को ही अपने साथ लेकर चल पायेंगे और आबादी के एक बड़े हिस्से को सूने विरान तट पर थपेड़े खाने के लिए छोड़ देना होगा।

इसलिए आज राजनीति और अर्थनीति दोनों के लिए अन्तर्मन्थन का समय है। लोकतंत्र के तर्क की परिणति–जिसमें आम आदमी की चिन्ता एवं उसका शुभ प्राथमिक होता है– अर्थनीति में होनी ही चाहिए। लेकिन आम जनता महंगाई, बेरोजगारी और आर्थिक असुरक्षा की चाकी में पिस रही है। समान आर्थिक के आरम्भिक स्वप्न को फिलहाल ताक पर रख दिया गया है। सिर्फ आँखों को चुंधिया देने वाला विकास आज का प्रमुख मुहावरा बन गया है। वैसे भी हमारा दौर छद्म घोषणाओं का दौर है फतवों और अर्थच्युत राजनीतिक–सामाजिक नारों से सारा आकाश कुछ यो धुंधला हो गया है कि कुछ भी साफ–साफ दिखायी नहीं देता। कई बार ऐसा होता है कि मानवीय चेहरा या उसका मुखौटा धारण करके अमानवीय स्वार्क–प्रसंग ही आगे बढ़ाये जाते हैं और इन दिनों अक्सर यही हो

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 1, Issue 01, Jan 2018

रहा है। दुनिया में जो आतंक और दहशत व्याप्त है, उसका भी तो सैद्धान्तिक आवरण 'जिहाद' ही है। ये सारे संदर्भ अपने समय पर संदेह करने को विवश करते हैं। संदेह यह होता है कि कहीं तथाकथित उदारीकरण, संरचनात्मक सुधार या वैश्वीकरण जैसे हमारी सदी की महान राजनीतिक–आर्थिक संकल्पनाएँ वस्तुतः वंचना (Deception) भर न हों। क्या पता इनके पीछे मानव–जाति को नए स्वर्णिम–विहान में जागृत करने के बजाय सत्ता व स्वार्थ की संकीर्ण लिप्सा न छिपी हो ?देश की नैया के खेवनहार पिछले कई दशक से आर्थिक संवृद्धि (Economic growth) पर अधिक जोर दे रहे हैं। जबकि भारत जैसे विकासशील और आर्थिक असमानता वाले देश में आर्थिक सम विकास पर जोर देना चाहिए। जी0एन0पी0, जी0डी0पी0, प्रति व्यक्ति आय के आँकड़ों में औसत आदमी की खुशी और उसकी शान्ति फंसकर रह गयी है। आर्थिक सफलता और भौतिक सुख–सुविधाओं की उपलब्धि ही महत्त्वपूर्ण मानी जा रही है। आत्मिक–तुष्टि और नैतिक व अनैतिक के प्रश्न परे होते जा रहे हैं। होना यह चाहिए कि औसत आदमी के सुख और शान्ति में वृद्धि की जाय।

आज सिर्फ राष्ट्रीय ही नहीं, विश्व परिदृश्य पर अशांति, तनाव और बिखराव की स्थिति को परिलक्षित किया जा रहा है। वह भी तब जबकि क्रमशः आर्थिक विकास हो रहा है। नये–नये तकनीकी संसाधन जुट रहे हैं। विश्व–व्यापार बढ़ रहा है। संचार क्रान्ति ने विकास के नये वातायनों को खोला है। फिर मनुष्य अन्दर और बाहर दोनों तरफ से बिखर रहा है, टूट रहा है। आतंक और आत्महंता कुंठाएँ किस हताशा की परिणति है, इस पर अगर हम गौर से विचार करेंगे तो पायेंगे कि विकास के समूचे मानचित्र में लाभ हैं, शेयर बाजार की उखाड़–पछाड़ है, तेजड़ियों और मंदड़ियों की गहमागहमी है, आँकड़ों का शोर है, लेकिन पूरे परिदृश्य में औसत आदमी का चित्र ही गायब होता जा रहा है। इसी कारण हमारे समय की संवेदना तंतुओं के सच्चे पारखी अर्थनीतिविद्, ''इकॉनॉमिक रिफार्म विथ ह्यूमन फेस'' की बात करने लगे हैं।

समूचा सूचना संसार सिर्फ सुनहला सपना सजाने में संलग्न है। वह उपभोक्ता मानव मन की अपेक्षाओं को जगाता है। उनकी आकांक्षाओं को पंख लगाता है। लेकिन उसके पास उसकी परिपूर्ति का उपाय नहीं है। स्वयं इनका कवरेज भी एकांगी है। कुछ चमकदार, चिकने चेहरे अक्सर दिखते रहते हैं। इनमें विकास की अटकी हुई सुई एवं संत्रस्त मानवता की छवियाँ शामिल नहीं हो पाती हैं। बंद चीनी मिलों, विस्थापित किसानों और मजदूरों तथा किसानों की कराहें इतनी प्रबलता के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज नहीं करा पा रही है कि आधुनिक संचार माध्यमों के जरिये उनकी भी कोई सार्थक और हस्तक्षेपकारी आवाज सुनी जा सके। संचार–क्रान्ति ने वैश्वीकरण की प्रक्रिया को तेज किया है। इससे भारत में भी एक वैश्विक मध्यवर्ग उभरा है। इस वैश्विक हो चुके या होने को आतुर मध्यवर्ग को आऊट सोर्सिंग की गहरी चिन्ता है। यह चिन्ता गैर–वाजिब नहीं है, लेकिन किसानों की आत्महत्यायें या उनका विस्थापन भी राष्ट्रीय चिन्ता में शामिल होना चाहिए। उसका सिर्फ 'खबर' बनकर रह जाना चिन्तास्पद है। होना यह चाहिए कि ये खबरें भी आर्थिक नीति के निर्माताओं और सत्ता–संरचनाओं से नाभिनाचबद्ध प्रभु–वर्ग के लोगों की संवदनाओं का हिस्सा हो। बहरहाल, देर सबेर आम–आदमी की सुध लेना अर्थनीति के लिए आवश्यक होगा। बल्कि, वह समय अब आ गिया है, जब विकास के मानचित्र में औसत आदमी की चिन्ताओं और उसकी दुश्वारियों का अनुरेखण किया जाय।